ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 66-68

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

राजस्थान में "फड़ लोककला" का उदभव एंव विकास

1. स्मिता जायसवाल
2. डॉ0 जया जैन

1. शोध अध्येत्री – चित्रकला, जीवाजी विश्वविद्यालय, 2. प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष– चित्रकला विभाग, शासकीय कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0) भारत

Received-11.10.2023, Revised-16.10.2023, Accepted-20.10.2023 E-mail: jaiswalsmita138@gmail.com

सारांशः राजस्थानी लोककला मे फड़ चित्रकारी अपना विशेष स्थान व महत्व रखती है। फड़ चित्रकारी का उदगम राजस्थान के मेवाड़ शैली की शाहपुरा उपशैली से हुआ है। फड़ चित्रण पट्ट चित्र का ही स्वरूप है राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के शाहपुरा में स्थित प्रमुख स्थान है, जिसे शाहजहाँ के समय मे अलग राज्य का स्थान प्राप्त हुआ। मेवाड़ परम्परा को आधार बनाकर यह जो उपशैली विकसित हुई, उसमे लोक जीवन का विशेष प्रभाव रहा जो आज 'फड़' चित्रण में दिखाई पड़ता है।

कुंजीभूत शब्द– फड़ लोककला, राजस्थानी लोककला, फड़ चित्रकारी, मेवाड़ शैली, पट्ट चित्र, उपशैली, लोक जीवन, परासाक्ष्य।

किसी राष्ट्र या देश की संस्कृति साहित्य व कला उसके अतीत के स्वरूप का दर्शन कराती है। मनुष्य के जन्म के साथ ही कला का प्रारम्भ हुआ है भारतीय लोक कला का रूप हमे हडप्पा–मोहनजोदड़ों से देखने को मिलता है, जिसमे मनुष्य ने अपनी भावनाओं को तूलिका द्वारा टेढ़ी– मेढ़ी रेखाकृतियों को गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित किया। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास हुआ वैसे–वैसे कला के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता गया।

भारत एक ऐसा देश है, जिसकी अपनी समृद्ध परम्पराएँ व संस्कृति है। भारतीय संस्कृति एवं चित्रकला के परासाक्ष्य मे राजस्थानी चित्रकला का अपना अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान है। तीस हजार वर्ष के मध्यकालीन कला के पूर्व प्रागैतिहासिक शैल चित्रों से लेकर आज तक की समकालीन राजस्थान की लोक चित्रकला का उन्नति–अवनति कम रोमांचक नही है। राजस्थान की लोक–संस्कृति एंव सामंती परिवेश में पनपी यह कला न तो किसी एक स्थान पर विकसित हुई और न ही किसी एक व्यक्ति द्वारा परिपोषित हुई है।

15वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक पुनरूथान की शताब्दी के नाम से विख्यात हैं। इस सदी में भारतीय कला साहित्य में नव जीवन का संचार हुआ। चित्रकला भी इस नव जागरण से अछूती नही रही। इस काल में ईरानी सम्पर्क ने भारतीय कलाकारों को अपनी कला को परिमार्जित और परिष्दृत करने की प्रेरणा दी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कला नवीन पथ और दिशा में उन्मुख हुई। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजस्थानी स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस अवधि में मुगल सम्राट अकबर ने मेवाड़ को छोड़कर समस्त राजपूताने को अपने प्रभाव में ले लिया था। प्रारम्भ में राजस्थानी चित्रों पर मध्य कालीन कला का प्रभाव बना रहा। राजस्थान की कला शैली के अध्ययन की दृष्टि से भौगोलिक और सांस्कृतिक धरातल के आधार पर चित्रकला की अजस्त्र धारा अनेक स्कूलों, अनेक रियासतों, शैलियों एवं उपशैलियों को परिपल्लवित करती हुई 17वीं से 18वीं सदी में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची। 'कार्ल खण्डालावाला' ने 17वीं और 18वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल को राजस्थानी चित्रकला का 'स्वर्ण युग' माना है।

वास्तव मे राजस्थानी चित्रकला की निम्नांकित चार शैलियो मे विभाजित कर सटीक रूप से परखा जा सका है। इन चार शैलियों से अनेक उपशैलियाँ पनपी तथा विकसित हुई एवं एक दूसरे से प्रभावित होती रही है। मेवाड़ मारवाड़, हाड़ौती, ढूंढाड़, शैलियों की अनेक उपशैलियाँ और विकाणा–कला मे समाहित राजस्थानी चित्र कला का जो एक समग्र परिदृश्य बनता है, वह निश्चय ही अध्ययन के विभिन्न आयाम प्रस्तुत करता है। इनसे सम्बिधत शैलियों – उपशैलियों का विभाजन –

मेवाड़ शैली– मध्यकालीन भारतीय इतिहास मे कलात्मक और सांस्कृतिक क्रियाकलाप के एक अग्रणी केंद्र के रूप में मेवाड़ प्रसिद्ध है यहाँ के राजा महाराजाओं में कला और साहित्य के प्रति विशेष लगाव था। मेवाड़ चित्रकला का प्रारंभिक उदाहरण 1605 ई० में निसर्दी द्वारा चित्रित रागमाला की एक श्रृंखला है इस चित्रों पर मुगल चित्रकला चौरपंचाशिका शैली का प्रभाव है। मेवाड़ चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप जगतसिंह (1628–1652 ई0) के काल में देखने को मिलता है। इस शैली की उपशैलियों मे उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ़, शाहपुरा आदि है।

मारवाड़ शैली– राजस्थानी चित्रकला में मारवाड़ शैली का विशिष्ट स्थान है मारवाड़ को 'मरुस्थल', 'मरूप्रदेश' आदि नामो से भी जाना जाता है, यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा उतनी ही आश्चर्यचकित कर देने वाली है। राठौर वंश के राजपूतों की इस धरती पर जो चित्रकला की परम्परा विकसित हुई वह मारवाड़ स्कूल की चित्रकला के नाम से जानी जाती है, इसकी उपशैलियाँ है – जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, अजमेर, नागौर आदि।

हाड़ौती शैली– ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्षेत्र कलात्मकता का गढ़ रहा है। हाड़ौती की चित्रकला का इतिहास राजस्थानी चित्रकला के अनुकूल ही हुआ बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली हाड़ौती की उपशैलियाँ है।

ढूंढाड शैली– ढूंढाड़ की चित्रकला समय–समय पर नये रूप रंग में विकसित होती रही है। इसकी उपशैलियॉ जयपुर, अलवर, उनियारा, शेखावटी आदि है। कला के मूल में प्रारम्भ से ही धार्मिक भावनाओं की प्रधानता रही है। लोक–गीत, लोक चित्रकला, लोककथाओं में प्रायः धर्म के दर्शन होते है। इसका प्रमुख कारण लोक परम्पराओं का धर्म के साथ गहराई के साथ जुड़ा होना है। लोक–कथाओं का धार्मिक महत्व यह भी है कि ये मानव समाज को एकता के सूत्र में बाँधती है और साथ ही कला के उत्कृष्ट नमूनों से हमारा साक्षात्कार कराती है।

लोक–कला, लोक–मानस से प्रेरणा और पोषण पाती है एवं उसी को प्रतिबिम्बित करती है। लोक मानस का स्वभाव सहज

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

और सरल होता है। लोक जीवन के ये शाश्वत स्वर लोक कला में अभिव्यक्त होते हैं। हृदय की सरलता सुबोधता, लोककला के प्राण है।

वास्तव में लोककता का जन्म सांस्कृतिक भावनाओं, रीति–रिवाजों विश्वासों एवं परम्पराओं आदि पर आधारित मनुष्य के सृजनात्मक प्रवृत्ति के विकास के साथ दिखाई देता है। आदिकाल मे ही मानव अपने विचारों को अभिव्यक्त करने एंव भावनाओं को सम्प्रेषित करने के लिए कला का सहारा रहा है। धीरे–धीरे मानव ने अपनी रचना आरम्भ कर दी और कला में अलंकरण की प्रवृत्ति जागृत हुई। परिणाम स्वरूप घरों की भित्तियों, द्वार–आंगन आदि की साज–सज्जा से इस प्रवृत्ति का विकास हुआ। यह कला बिना किसी आश्रय, प्रलोभन, प्रोत्साहन के स्वतन्त्र रूप से निरन्तर विकसित होती रही है।

प्रो० सी. एल. झा. के अनुसार "लोक कला मानवीय भावनाओं के साथ –साथ चली आ रही है जो अति प्राचीन है, अर्थात् लोक कला मानवीय भावनाओं का सुंदर प्रदर्शन है जो सांस्कृतिक उन्नति के साथ–साथ विकसित होती चली आ रही है।"

प्रो. झा ने कहा है कि "लोककला हमारी धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की प्रतीक है, जो मानव–ह्रदय की उपज है और जिसमें कृत्रिमता एवं प्राविधिक प्रयोगों का कोई भी स्थान नही है।" लोक कला के माध्यम से हमे प्राचीन धर्म, सभ्यता, परम्परा, संस्कृति और उनके मूल स्रोतों का ज्ञान होता है। लोक कला का अधिक प्रचार ग्रामीण जनपदों मे दिखाई देता है। किन्तु नगरों की कला के विकास में भी इसका पूर्ण सहयोग रहा है। ललित कला के समान लोककला मे भी मानवीय भावनाओं की उत्कृष्ट प्रवृत्ति दिखाई देती है। कथा, लोक गाथा, दन्त कथाओं, रीति–रिवाज आदि को लोक कलाकार ने विषय के रूप में आधार बनाया है। इसी के साथ–साथ प्रायः धार्मिक परम्परायें भी लोककला की पहचान कराने में सहायक है और इन धार्मिक संस्कारों, रीति–रिवाजों, सामाजिक उत्सवों आदि के विशिष्ट अवसरों पर जो धार्मिक कथा चित्रण किया जाता है। इससे धार्मिक गुण रहस्यों का भी ज्ञान होता है। साथ ही ललित कला की विभिन्न विधाओं के आपसी सम्बन्धों के समायोजन का भी पता चलता है। उनके सहयोग तथा सद्भावना प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती है। राजस्थान, कुमाऊँ, पश्चिम बंगाल आदि क्षेत्र लोककला की खान माने जाते हैं। इन सभी में लोक कलाओं का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मुख्यतः मांडणा, गोदना, ऐपण, फड चित्र, पट चित्र आदि रूपों को देखा जा सकता हैं।

भारत मे लोक कला को घर परिवार की स्त्रियों ने जीवित रखा है। परम्पराओं से चली आ रही साधना से अपने को विच्छिन्न नही होने देती व्रत, उपवास, उत्सव, त्यौहार एक धार्मिक अनुष्ठानों पर अपने बच्चें, पति, भाई, पुत्री व जाति सुख–समृद्धि के लिए वे अनेक मंगल कामनायें करती है। देश के त्यौहारों व उत्सवों पर अनेक मांगलिक कार्य करती है। इन सभी मांगलिक पर्वो पर अनेक कलायें विकसित होती रही है।

भारत के समस्त प्रदेशो व क्षेत्रों मे लोक कला के विविध रूप देखने को मिलते है, लेकिन राजस्थान का जन–समाज लोक कला से जिस प्रकार जुड़ा है, वह अपने में बहुत ही अनोखा है। सदियों से रूपहले राजस्थान में साहित्य, कला व संस्कृति की जो अविरल रस धार प्रवाहित होती रही है। उसी के कारण यह गौरव प्रदेश आज भी अपनी लोकधर्मो परम्परा का अप्रतिम उदाहरण बना हुआ है। यहाँ की लोक परम्परा मांडणा–कला, फड़ कला, पट कला, खिलौने, तोरण, थम्भ, ईसर गणगौर कावड़ और कठपुतली आदि कला का विशेष स्थान है। जैसी लोक परम्परा को जीवित रखने के लिए यह लोककला राजस्थानी जन–जीवन, परम्पराओं धार्मिक कथाओं व वीरगाथाओं को प्रतिविम्बित करती है।

राजस्थान मे अनेक वीर पुरुष हुये है, उनमें कुछ ऐसे हुये है, जिसकी छवि जन–मानस, लोक–मानस के ह्रदय मे सदा सर्वदा के लिए विराजमान है। उन्ही की वीरता की कहानी को लोक कलाकारों ने मिलकर कपड़ें के पटों पर अभिव्यक्त किया है, जिन्हें जन–सामान्य देखकर और कथन को सुनकर आत्म विभोर हो उठता है। इसी चित्रांकन परम्परा को फड कहते है। वर्तमान मे वीर पुरुषों की गाथाओं के साथ धार्मिक चित्रों का भी अंकन किया जाने लगा है। राजस्थानी लोककला में फड़ चित्रकारी अपना विशेष स्थान व महत्व रखती है। फड़ चित्रकारी का उद्गम राजस्थान के मेवाड़ शैली की शाहपुरा उपशैली से हुआ है। फड़ चित्रण पट्ट चित्र का ही स्वरूप है। राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के शाहपुरा में स्थित प्रमुख स्थान है जिसे शाहजहाँ के समय मे अलग राज्य का स्थान प्राप्त हुआ। मेवाड़ परम्परा को आधार बनाकर यह जो उपशैली विकसित हुई। उसमे लोक जीवन का विशेष प्रभाव रहा जो आज भी 'फड़' चित्रण में दिखाई पड़ता है।

'फड़' यॉनि 'पट्ट' चित्रकला का इतिहास बड़ा प्रचीन है। 'फड़' शब्द 'पढ़' से बना है, क्योंकि 'फड' शैली मे चित्रित शौर्य गाथाओं व धार्मिक गाथाओं को गाकर पढ़ा जाता है। 'फड़' चित्रकला संगीत और नृत्य से मिलकर तैयार हुई, राजस्थानी लोक विधा है 'पट्ट' शब्द से ही अपभ्रंश होता हुआ लोक भाषित शब्द 'फड़' बना मात्र शब्द ही लौकिक न हुआ साथ ही जैन तीर्थंकरों का स्थान भी लोक देवी–देवताओं ने ले लिए इन लोक देवताओं में राजा महाराजाओं का जिन जन समुदाय ने अधिक साथ दिया उसके लोकानुरंजन हेतु पट चित्र तैयार होने लगे।

फड़ मूलतः मेवाड़ क्षेत्र मे बनती है और इस पर जैन धर्म का आसाधरण प्रभाव है। पाबू जी तथा देव नारायण जी के पुजारी जिन्हें लोक भाषा में भोपे कहा जाता है। अपने संरक्षकों (धाताओं) के घर पर जा कर अपना पेशेवर गाना व नृत्य के साथ फड़ के आधार पर लोक देवता की कथा कहते है। फड़ राजस्थान में भीलवाड़ा जिले की विशेषता है और भीलवाड़ा जिले की भोप जनजाति की कलात्मक विरासत भी। ये चित्र केवल कलाकृति नहीं है, बल्कि कला, संगीत, और साहित्य की एक महत्वपूर्ण संस्कृति है, जिसे फड़ पर चित्रित करते और गीतों से वाचते है। भारतीय संस्कृति की इस ऐतिहासिक कलात्मक धरोहर को वर्षो से उन्होंने संभालकर रखा और विकसित किया। जन्तर वाद्य, जिसे बॉस की तीलियों के बीच दो तार बांधकर बजाया जाता है तथा रावण हत्था जो सारंगीनुमा एक वाद्य है, पर इस गीत को गाते हुए त्यौहारों और मेलों में इसकी शोभा बढ़ाते हैं।

राजस्थान के शाहपुर का इतिहास तो मात्र अधिकतम 450 वर्ष पुराना है, जबकि फड़ चित्रण तो अपने में हजारों वर्ष का

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

इतिहास समेट कर देश के विभिन्न भागों, गाँवों गलियारों मे घूमती फिरती रही है। सुषासनाह चर्यम् सम्प्रति प्रथम उपलब्ध चित्रित ग्रन्थ है, जो मेवाड़ मे चित्रित हुआ।

मूलतः यह कलात्मक कला लोक गाथाओ में रामायण और महाभारत के लोक देवताओ की शौर्यगाथाओं पर आधारित है। फड़ लगभग 30 फीट लम्बी तथा 05 फीट चौड़ी होती है। इस कलात्मक लोक कला के चित्रों मे अनुपात रंगों, रंग एवं फलक संयोजन के जरिए प्रस्तुत करता है।

राजस्थान मे भोंपा का अर्थ किसी देवता का पुजारी। ये मंदिर में पूजा अर्चना करते है। यह मन्दिर भेरूजी, माताजी अन्य स्थानीय देवता अथवा लोक देवता या लोकदेवी का होता है। सामान्यतः भोपा किसी भी जाति जैसे ब्राह्मण, राजपूत, गुर्जर, जाट, रेबारी, डांगी, मेघवाल, भील आदि का भी हो सकता है, किन्तु पाबूजी तथा देवनारायण जी की कथा व फड वाचने वाले भोपे 'भोपा' नामक विशेष जाति के ही होते हैं। सूती कपड़ें पर चित्रित फड़ को एक बाँस मे लपेट कर रखा जाता है, जिसमें किसी लोक देवता (विशेष रूप से पाबू जी या देवनारायण जी) की कथा का विशेष चित्रण किया जाता है। बाँस मे लपटे फड़ को धीरे–धीरे खोलकर भोपा तथा भोपी द्वारा लोक देवता की कथा को गीत व संगीत के साथ सुनाया जाता है। पाबू जी तथा देव नारायण जी के पुजारी जिन्हें लोक भाषा मे 'भोपे' कहा जाता है। अपने संरक्षकों (धाताओं) के घर पर जाकर अपना पेशेवर गाना व नृत्य के साथ फड़ के आधार पर लोक देवता की कथा कहते है। यह भोपा जाति के लोगों के साथ कलात्मक धरोवर के रूप में तथा जीविका साधन के रूप में भी चलता रहता है। फड़ लोक चित्रकला मेवाड क्षेत्र में बड़ी समृद्ध रही है, फड़ चित्रांकन की कुछ कलात्मक अभिव्यक्तियाँ है, जो लोक कला के अन्तर्गत अवश्य है, पर उसमे शास्त्रीय कला के समस्त गुण है।

प्रारम्भिक मेवाड़ शैली मे गुजरात व मालवा शैली का प्रभाव दृष्टव्य है, जो मेवाड़ की लोक चित्र शैली से मिलकर रंगों के चटकपन प्रकृति की आलंकारिक रूप सज्जा तथा मोटी रेखाओं के माध्यम से उतरी है फड़ चित्रांकन में रंगों का सुफियानापन कही–कही छाया–प्रकाश एवं चेहरो में सौष्ठव आया है पुरुष आकृति गढ़ीली, मूछों से युक्त, विशाल नेत्र तथा सुन्दर पगड़ी से सुशोभित है। नारी चित्रण मे दोहरी चिबुक छोटा कद लहंगा पारदर्शक लूगड़ी कमर तक कपोलों पर झूलते केश, कर्णफूल, कंगन बाजूबंद पायल पहने हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, आर0ए0, – कला विलास, भारतीय चित्रकला
2. सिंह, सुषमा, – लोककला
3. अग्रवाल, डॉ. गिरिराज किशोर, – आधुनिक भारतीय चित्रकला
4. समकालीन कला – जून सितम्बर 2002 पृष्ठ 33 एक जीवंन्त लोककला परम्परा का प्रवाह (नीलिमा)
5. पाबूजी की फड़ – डॉ0 महेन्द्र भानावत
6. पाबू प्रकाश – मोड़जी आशिया

*****